International Journal of Creative Research Thoughts
Volume 2, Issue.3, March 2014 ISSN:-2320-2882

ORIGINAL ARTICLE

''आदिवासी लोक संस्कृति अस्तित्व की लड़ाई ''

(पातालकोट की भारिया जनजाति के विशेष सन्दर्भ में)

शोधार्थी
(श्रीमति सुनीता पन्द्रों)
एम.ए. नोट क्वालीफाईड
(समाजशास्त्र)
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय
भोपाल, (म.प्र.)

सारांश –

मध्यप्रदेश के छिन्दवाड़ा जिला की तामिया के पातालकोट की ''भारिया'' जनजाति की लोक संस्कति के अस्तित्व को बचाने एंव विकास के लोक संस्कृतिक के अस्तित्व को बचाने एवं विकास के नये आयाम पर दृष्टि डाली गई हैं पाताल कोट की भारिया जनजाति के परम्परागत रीति–रिवाजों, लोक परिवर्तन, लोकनाट्, आचार–व्यवहार में निरन्तर परिर्वतन देखने को मिल रहा है। ''आदिवासियें'' को निमनस्तर पर रखने का सिलसिला वर्तमान में भी कायम है, इसी पर कुठाराघात करना है कि आखिर ऐसा कब तक चलता रहेगा? इसका उत्तर हमें ही खोजना है। ''जनजातियों'' के ''विकास'' को लेकर ''विकास'' के ना पर उनके योजनाएँ एंव मन्त्रालय एवं आयोगों का गठन हो चुका है, परन्तु सभी का परिणाम निःसन्देह आदिवासियें का माखौल उड़ाने के लिए ही पर्याप्त है। परिणाम स्वरूप कहा जा सकता है कि सभी सामान्यजन वास्तविक मानवता के साथ आदिवासी या जनजाति संस्कृति को बचाने एवं विकास के मार्ग पर अनुसरण करने का साहस प्रदान करें एवं करवाये। ऐसा सम्मिलित प्रयास से ही सम्भव है । निःसन्देह वह दिन दूर नहीं होगा जब हम इसी संस्कृति जीवन, नृत्य संगीत आर्थिक क्रियाकलाप आदि पर सैकड़ो शोधकार्य किये गये है, अपितु भारतीय समाज में भारिया जनजाति (आदिवासियें की संस्कृति) जीवन, नृत्य आरक्षित, शोषित कुपोषित मनुष्य के रूप में पहचानना भूखे, नंगे, इत्यादि पर अनेकों शोध कार्य किये

Please cite this Article as : श्रीमति सुनीता पन्द्रों ''आदिवासी लोक संस्कृति अस्तित्व की लड़ाई :International Journal Of Creative Research Thoughts, Volume 2, Issue.3, March 2014

गये है। वर्तमान में जारी हैं और भविष्य में जारी रहेगें, किन्तु व्यक्ति दावे से यह नहीं कहा सकता है कि वह आदिवासी संस्कृति को पूरी तरह समझ गया है।

प्रस्तावना :–

मानव जीवन सदैव से ही आशाओं की रंगत से परिपूर्ण रहा है। आशावादी व्यक्ति के जीवन में जीवन पर्यन्त खुशियॉ मानवीय सम्बन्धों के साथ जीवन्त रहती हैं प्रश्न यह है कि आशावादी होने का सरलतम उपाय क्या है? जवाब में हम यह कह सकते है कि व्यक्ति के जीवन में उसके रूचिपर्ण एवं उत्साह देने वाले कार्य आशावादी व्यक्तित्व बनाने में अहम् भूमिका अदा करते हैं। संगीत, लोक–संगीत, लोक–परम्परा एवं परम्परागत रीति–रिवाज व्यक्ति को समाज से जोड़ने के बाद व्यक्ति में इनके पति उत्साह एवं आशावाद बना रहता है। विडम्बना यह है कि वर्तमान परिवेश में हम लोक–परम्परा जिन्हें भौतिकवादी सभ्यता में मात्र आदिवासियों में ही उसी रूप या कुछ नवाचार के साथ अस्तित्व में है, कह सकते है। आज जो लोक–संस्कृति लोक परम्परा एंव परम्परागत रति–रिवाज व्यक्ति को समाज से जोड़ने के बाद व्यक्ति में इनकी प्रति उत्साह एंव आशावाद बना रहता है। विडम्बना यह है कि वर्तमान परिवेश में हम लोक परम्परा जिन्हें भौतिकवादी सभ्यता में मात्र आदिवासियों में ही उसी रूप या कुछ नवाचार के साथ अस्तित्व में है कह सकते है। आज जो लोक'संस्कृति या आदिवासी संस्कृति मात्र म्यूजियम संग्रहालय में संग्रहित है, जरूरत महसूस की जा रही है कि उनका अवतरण हमारे समाजिक, दैनिक जीवन में प्रत्यक्षतः शामिल हो और निश्चित रूपेण संस्कृति देश की धरोहर होती है। अतः इसका सम्मिलन अतिआवश्यक है।

उत्पत्ति :–

हमारे पुराने अध्यनों में पाताल लोक का कई बार जिक्र आया है। पाताल कहते ही मानस पल पर एक चित्र उभरता है, जो हमें धरती के नीचे सातों पातालों की कल्पना में पहुंचा देता है भारत का हृदय कहलाने वाले मध्यप्रदेश की धरती पर ऐसा ही एक यर्थात जोक है पातालकोट। पातालकोट प्रकृति की अद्भभूत रचना है। लगता है कि किसी बड़ी क्रेन ने विशाल धरती पर अपा पंजा लगाया और सारी मिट्टी खींचकर बाहर फेंक दी। शेष बची पहाड़ियॉ खाइयॉ और तीन तरफ पत्थरों का कोट। इन सबने मिलकर पाताल कोट को दोंनो

का आकर दे दिया है। इस दोनों में क्या नहीं है मानवीय धड़कनों के साथ पशु–पक्षी, नदी–पहाड, कन्दरा, वनस्पति और प्राकृतिक बना देते है।

यहॉ कोट का अर्थ चट्टानी दीवार है। दीवार भी इतनी ऊॅची और छाती पर खडती हुई कि आदमी का दर्द चूर–चूर हो जाये पातालकोट के अन्दर गॉव में नीचे खड़े होते है तो ऊपर देखने पर आसमान से नजर मिलती है पातालकोट के रहवासी कोट को कनात कहते है। कोटजिस मुस्तैदी और दृढ़ता से भारियाओं के ऑगन में खड़ा है, अनकी सुरक्षा का पक्का कवझ बना गया है। इस अर्थ में कोट के लिए कनात की उपमा सर्वथ उपयुक्त है। यह कनात हर जगह हमारे अन्तर्मन में उतर जाती है और महसूस होती रहती है। जिधर नज़र उठाकर देखते, पत्थर की सीधी, ऊॅची, चौड़ी–कड़ी और विशाल कनात यसीना ताने खडी होती है। सुबह सोकर उठिये कनात (कायनात) समाने खड़ी है सोते जागते, खाते–पीते, चलते–दौड़ते हर क्षण पाताल यह कोट पीछा करता रहता हैं नया आदमी अपने आपको कनात से घिरा पाता हैं। कनान की मुडेर पर उगे पेड़ों की हवा में हिलती डालियॉ नीचे रहने वालों को जैसे हाथ हिला–हिलाकर कह रही हो , देखों हम कितनी ऊपर है।

मुंडरे पर खड़े पातालकोट को देखने वाले पर्यटक नीचे से गुड्डे और गुड़ियाओं की तरह हिलते, डुलते दिखते है। इसी तरह ऊपर से नीचे के आदमी चींटियों की तरह रेंगते दिखाई देते हैं। भारतीयों के घर माचिस की डिबिया की तरह दिखाई देते है। यह कनात कही एक हजार दो सौ फीट, कहीं एक हजार सात सौ पचास फीट और कही खाईयों के अतःस्थल से लगभग तीन हजार सात सौ पचास फीट ऊॅची है। उत्तर पूर्व में दूधी नदी की ओर कनात की ऊॅचाई कम होती गई है, इस कारण इस तरफ से पाताल कोट का आकर गाय के खुर की अनुकृति की तरह हो गया है। कुछ लोगों ने इसका आकार घोड़े की नाल के समान बताया है। किसी ने पातालकोट की कुटीर नुमा कहा है।

अन्यासी वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैली पाताल कोट की धरती की प्राकृतिक सुषमा को नजदीक से निहारना अपने आप में कौतुहल से भरे एक नवीन अनुभव से गुजरना है। एक ऐसा अनुभव जो तन ओर मन को रोमांचित करदे तीन ओर से स्थीई कनातों से घिरा पातालकोट समुद्र सतह से 2750 से 3250 फीट की ऊॅचाई पर स्थित है।

जिला मुख्यालय छिन्दवाड़ा के उत्तर सतपुड़ा के पठार पर पतालकोट उपस्थित है। छिन्दवाड़ा से पातालकोट 62 किलोमीटर और तामिया विकास खण्ड से 23 किलोमीटर दूर है। तामिया से बिजौरी और बिजौरी से हर्रई मार्ग पर ग्राम छिंदी पक्की सड़क है। छिंदी से जीप द्वारा या पैदी ग्राम रातेड़ के सिरे तक पहुंचा जा सकता हैं यह दूरी कच्चे रास्ते से तीन–चार किलोमीटर और पक्की सड़क से 5 किलोमीटर है।

''आदिवासी लोक संस्कृति के अस्तित्व के लिए संघर्ष पर एक नजर–प्रश्नविराम (?) करना है। आदिवसी लोक संस्कृति के अस्तित्व के लिए संघर्ष का जव प्रश्न उठता है तो न जाने कितने अध्ययन कितने प्रयास सरकारी गैर सरकारी सभी सामने आते है जो आदिवासी संस्कृति, कला और परम्परा कं संरक्षण और संवर्धन का पुरजौर कोशिश कर रहे है, बावजूद इसके संक्रमण के इस काल में, परिवर्तन के इस दौर में जहां उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण के नाम पर विकास के नये आयाम नये क्षिति जपर हमारे कदम नई सफलाताएँ तय कर रहे वहां हमारे वनवासी हमारे आदिवासी भी संक्रमण काल में जीवन व्यतीत कर रहे है। बदलते वक्त के साथ आदिवासी लोक संस्कृति अपने अस्तित्व के लिए लड़ रही है। भारतीय समाज के निर्माण में ग्रामीण एंव नगरीय संस्कृति की नीवं पर ही भारतीय संस्कृति खड़ी है, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। भारत की जनसंख्या का 8.01 प्रतिशत आबादी वाली आदिवासी संस्कृति आजादी के 63 साल के बाद भी तमाम कोशिश के बाद दम तोड़ रही है, और यदि समय रहते शासन प्रशासन और हम सभी विकास के समग्र स्वरूप को संतुलित प्रयास कोशिश में असफल होते है तो यकीनन हमारी आदिवासी लोक परम्परा संग्रहालयों में सिमट कर सिसकती नज़र आयेगी। परिवर्तन का तात्पर्य किसी वस्तु अथवा घटना समय के अंतराल के साथ होने वाले अंतर से ही नहीं है, इसमें गति, संशोधन और रूपान्तरण का भाव ही नहीं बल्कि इसमें गति संशोधन और रूपान्तरण का भाव भी सम्मिलित होता है। जब यह परिवर्तन किसी समाज के सामाजिक संगठन सामाजिक संस्थाओं अथवा सामाजिक भूमिकाओं के प्रतिमानों में किसी प्रकार के रूपान्तरण, बदलाव या परिष्करण के रूप में दिखाई देता है। वह सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन का रूप होता है। सड़कों का निर्माण,

यातायात और संचार के साधनों ने शहरी सभ्यता की छाप आदिवासी सांस्कृतिक तत्वोंपर स्पष्टतः देखी जा सकती है।

लोक परम्परा विशेषतः लोगगीत लोकनृत्य, लोक संगीत लोकनाट्य जनजातियों के सर्वोत्कृष्टकला है। लोक परम्पराऍं हमारी सभ्यता से बाहर का मामला नहीं अपितु यह तो उत्कृष्ट मानवीय सम्बन्धी की अभिव्यक्ति है।

लोक विधाऍं पिछड़ेपन का दस्तावेज नहीं बल्कि सत्ता की संस्कृति और भोगवाद होड़ से दूर लोक की आकांक्षाऍं झॉकती है, उनकी तुलना अन्य विधाओं से नहीं की जा सकती। लोकगीतों के माध्यम से हम आदिवासियो के जीवन संसार याानि सामाजिक संरचन, संगठन व्यवस्था संबंधो का परिचय पा सकते है। मन की आकांक्षायें, भावनाऐं लोक विधाओं में स्वतः प्रस्फुटित होती है। आदिवासी लोकगीतों में कहीं अस्तित्व की लड़ाई है, कहीं प्रेम के वृतांत में मिलन और विरह है कहीं संबंधों में हास–परिहास है, कही उम्माद है कहीं उलाहना है तो कही उनके जीवन की जिजाविषा की झलक मिलती है। प्रकृति प्रेमी निर्मल निश्छल मन से प्रकृति पुत्र होने का अहसास भी लोक विधाओं में स्पष्ट होता है। सामाजिक जीवन की घनिष्ठता से जुड़े ये लोक परम्पराऍं अनुष्ठानों और संस्कारों की पूर्णता में है त्यौहार, मेले, उत्सव, पर्व इन लोक विधाओं का अपना महत्व जुड़ा है जो कि मन को आनंद और तृप्ति से भर देता है, साथ ही जीवन की वास्तविकताओं से सामना करने की प्रेरणा इन गीतों – नृत्यों और त्यौहारों में मिलती रही है। सामाजिक जीवन का प्रत्येक पहलु इन विधाओं से बंधा है, रचा बसा है। इसलिए तो लोक विधाऍं लोक परम्पराऍं, लोक साहित्य इतिहासकरों के लिए एक चुनौती है कि ''अभिजन्य कैद में क्यों है?''

आदिवासी लोक संस्कृति एवं अस्त्वि का संघर्ष विभिन्न दृष्टिकोण व जनजातीय सांस्कृतिक परिवर्तन का सिद्धांत नहीं है। भारत में आदिवासी संस्कृति उनके समाज में ही आपसी संघर्ष के कारण पहले पृथक हुई कबीले में रहने वाली जनजातियों में आपसी संघर्ष का उल्लेख हमें नाग युग के मधुरांतक देव के एक अभिलेख में मिलता है। (संगीतिका – सर्वेक्षण– हीरालाल शुक्ल, पेज–7)

इसी समय संघर्ष के साथ कृषि विकास या कृषि युग में मानव ''हलवाहक'' बना, उसके हाथों में हल आया जैसे प्रकृतिक की कलाई उसके हाथों में आ गई।

परिवर्तन के नियमानुसार जनजातियों में परिवर्तन आया तो उनका एक वर्ग ''राज्य पद'' पर आसीन हुआ, जिसे, ही सामूहिक सत्ता सौंपनी पड़ी क्योंकि वह स्वंय को ईश्वर कहता था शेष लोगों को उनके सामने नाचना पड़ा और अपने अस्तित्व के लिए लड़ाई जारी की। जैसे ही भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना हुई मनोरंजक उद्योगों के कारण आदिवासी संस्कृति अपनी जड़ों से पृथक होने लगी। एक ओर अंग्रेजी की दमनकारी नीति, और दूसरी सामंतवादी अंतविरोध के कारण जनजातियों की नई सभ्यता का उदय हुआ साथ ही उस व्यवस्था में जन्म हुआ धन की वुल्पता, आर्थिक विषमता और भेदभाव का, जिसमें आदिवासी ही आदिवासी को पहचानने में मना करने लगा जिसका उदाहरण 1910 की सशस्त्र क्रांती रही। समय बदला अंग्रेजो की हुकुमत के साथ अंग्रेजी सरकार का अंत हुआ और स्वतन्त्रता को महसूस करना प्रारंभ किया लेकिन यहा भारत में राजनीति में संभ्रांत परिवार ने देश की बागडोर सॅभाली और एक वर्ग यानि ''अभिजन्य वर्ग'' देश में शासन करने लगा। लेकिन आदिवासियों का शोषण नहीं थमा (भारतीय संवधिान में भी आदिवासी संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए अनुसूचित जनजातियों तथा आदिवासी संस्कृति सुरक्षित रखने के लिए अनुसूचित जनजातियों तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन व नियंत्रण से संबंधित प्रसवधान (भारतीय संविधान की पॉचवी अनुसूची) तथा आदिवसी संस्कृति के लिए अरक्षण का प्रावधान किया गया। आजादी के बाद से ही विभिन्न योजनाओं ने ढेरों योजनाऍ एवं विकास कार्यक्रम बनाये गये किंतु इन सब में आदिवासियों के एक अभिजन वर्ग ने ही लाभ लिया। आज आर्थिक संकट में पीसता हुआ आदिवासी अपने अस्तित्व के साथ–साथ अपनी लोकलाऍ, लोकसंस्कृति, लोक परम्परा, लोकनृत्य संगीत तथा रीति–रिवाज के अस्तित्व की चिन्ता में है, जो आधुनिक के जामा तथा रोजी रोटी की तलाश में नजर में ही देखा जा सकता है। आदिवासी मजदूरी के लिऐ खदानों में फिसल रहा है । (वैलाडीला की खदान)

खाने क लिए मोहताज पाताल कोट की भारिया जीविका चलाने के लिए खानाबदोश सारे जीवन जीने को मजबूर है, (छिन्दवाड़ा, सिवनी, झाबुआ) ये हमारे प्रकृति प्रेमी, वनवासी,

आदिवासी और वही आदिवासी संस्कृति की सच्ची तस्वीर है। महात्मा गांधी से लेकर वर्तमान राजनीतिज्ञों, समाज सुधाराको, अर्थशास्त्रियों द्वारा निचले और अंतिम पंक्ति के व्यक्तियों के विकास के लिए न जाने कितनी योजनाएँ और कार्यक्रम आजादी के बाद से तय किए जा रहे है पर वास्तविकता का सच्चा आईना आदिवासियेां के बीच देखा जा सकता है।

- भारिया जनजाति (आदिवासी संस्कृति) :वादियों की पहाड़ियों में सात पर्वतों की कन्दरा में। सात संकुरी उपत्यकाओं, से, गौंड देवताओं के आगमन के लिए। पहाड़ियों पर और घाटियों में, वनों के तोरणों में, सर्वत्र उन्होंने जनपद को भर दिया। (फोर साइम– हाइलेडस आप सेन्ट्रल इण्डिया)
- पातालकोट एक सामान्य परिचय :सतपुड़ा की सुरम्य वादिया की गोद में बसा पातालकोट जिला सुख्यालय छिन्दवाडा से 69 कि.मी. दूर रिक्त है। पातालकोट में 20 गॉव है जिनमें से 12 गॉव आबादी वाले है, शेष गॉव निर्जन है। यहॉ भारिया जनजाति के लोग निवास करते है, जिनकी जनंसख्या पातालकोट का सम्पूर्ण क्षेत्र 79 कि.मी. में फैला हुआ है। सतपुड़ा के घने जंगलों में मध्यप्रदेश के छिन्दवाड़ा जिले के तामिया में पातालकोट अपनी अद्भुत बसाहट और प्राकृतिक वादियों से और वहां के आदिवासियों से बरबस ही अपनी ओर ध्यान आर्कषित करता है। पााातालकोट की भारिया जनजाति की लोकपरम्पराएँ लोकों की धड़कन थी, प्रत्येक संस्कार अनुष्ठान का दैनिक जीवन में गीत नृत्यों, मुहावरां की झलक दिखाती। त्यौंहारों में मड़ई में भारिया टोलों में जीवन का सहज और सरल जीते थे। उनके गीतों में भारिया गीत, विवाह गीत, फाग गीत, सुआ गीत, ददरिया सजनी जस में लोकजीवन का हर पहलू झलकता था। कर्मा और सैलानृत्य तो उनके त्यौहारों की शोभा भी अत्यधिक सौन्दर्य एवं मनोहारिक रहती है। कुछ मुहावरे और लौक्तियां भी सुनी गई जिनमें सीख और संबंधों की सुन्दर व्याख्या थी। बेशक पाताल कोट की भारिया जनजाति में लोकतत्व बाद्य संस्कृति (अभिजन्य) और आधुनिकीरण के सभी कारकों से कितने प्रभावित है। इस परिकल्पना या कहिए कि लोकपरम्पराओं के अस्तित्व के लिए संघर्ष के लिए कुछ प्रश्नों की जानकारी :–

1. साक्षात्कार
2 .अवलोकन
3. केस स्टेडी मैथड

ये निम्नलिखित है :–

अ) बच्चों के जन्म के समय लोकनृत्य का प्रचलन है?

ब) क्या इन गीतों का सुने हेतु कैसेट इत्यादि का प्रयोग किया जा सकता है?

स) इन गीतों में लड़के –लड़की के जन्म के आधार पर कोई अंतर है?

द) विवाह संबंधी गीत और नृत्य का निर्वाह?

इ) मृत्यु संस्कार–मृत्युगीत की परम्परा ?

ई) तीज–त्यौहारों मर्ड़इ में नृत्य गीत की परम्परा है?

उ) लोक नाट्य में वर्तमान में क्या परिवर्तन है ?

ऊ) लोकगीत–लोकनृत्यों में युवाओं की भागीदारी?

ए) बुजुर्गो द्वारा वाचिक परम्परा का निर्वाहन कितना हो रहा है?

ऐ) विकास और अन्य सरकारी गैर सरकारी प्रयासों से लोक परम्परा की स्वरूप की जानकारी ?

अपनी परिकल्पना की जॉच विगत वर्ष पातालकोट जाने पर हुई जिसके निष्कर्ष पर शायद अभिजान्य वर्ग भी करा रहा है, क्योंकि आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, बाजारीकरण, परिचमीकरण, नगरीकरण या हमारी उपभोक्तावादी प्रकृति ने प्रकृति पुत्र के क्षेत्रों का भी बाजार में परिणीत कर दिया गया है जहॉ हर फूल बिकती है फूलों की खुश्बू को भी वोतल में भरकर बेचा जा रहा है।

1) प्रथम वो लोक परम्परा के निवार्हन हेतु युवा पीढ़ी का कोई उत्साह ही नहीं दिखता। कुछ नौकरीपेशा युवाओं से पूछने पर जानकारी प्राप्त हुई कि उनके द्वारा कुछ विशेष

मौंके पर (दीपावली) ही वे पातालकोट जाते है, और पातालकोट में जाने या न जाने पर वह कोई विशेष लगाव प्रदर्शित नहीं करते है। उन युवाओं ने यह भी जानकारी दी कि हमारे सारे रिश्तेदार तामिया और छिंदी में स्थायी घर बनाकर रहने लगे, और उनके जो परम्परागत व्यवसाय (जैसे–लकड़ी, आम को गुठली या वनोपज आदि) को करने में भी संकोच करते है। क्योंकि बच्चों की नौकरी के कारण उन्हें शर्म महसूस होती है। अतः पातालकोट की लोकसंस्कृति हॉस्टल, नौकरी, जीविकापार्जन के कारण बाह्य संस्कृति से जयादा प्रभावित है।

2) लोकगीतों में सिर्फ जन्य समय कुछ खास यानि छठी पूजन में ही लोकगीतों को गाये जाने का प्रचलन है। कुछ नौकरीपेशा महिलाओं से पूछने पर उन्होंने बताया बकौल महिलायें – हमें विशेष दर्जा दिया जाता है।

हमारी बुजुर्गो को लगता है कि हम शहरी माहौल से अभिभूत है और हमें अपने पारंपरिक संस्कारों के निर्वाहन में परेशानियां हो सकती है। अतः हमें इन सभी रीति–रिवाजों को मानने के लिए बाह्य नहीं किया जाता ।

3) विवाह सम्बन्धी नियम और संस्कार तो पूर्णतया ही प्रभावित हुए है। परम्परागत परिधानों का प्रयोग भी कम पया जा रहा है। विवाह सम्बन्धी नृत्यों में आधुनिक जीवन शैली के तत्व शामिल है।

4) मृत्युसंस्कार जो एक ''विशेष स्वरूप'' में होता था जहॉ मृतक स्तम्भ और जीवन दर्शन से पूर्ण गीत भी गाया जाता था। जिसका प्रचलन अब भी कुछ ही क्षेत्रों में देखा जा सकता है।

5) बुजुर्गो द्वारा निर्वहन तो और भी दयनीय स्थिति में दिखा क्योंकि लगभग अध्ययन के द्वारा दस बुजुर्ग महिला–पुरूष से पूछने पर पाया गया कि रोजी–रोटी की चिन्ता करें कि ये सब मानें। कुछ महिलाओं ने बमुश्किल एकाध गीत सुनाये।

6) लोकनृत्य का स्वरूप भी आज शहरी संस्कृति के तत्वों को समाहित कर रहा है और तो और आज इन लोक वाद्यो और लोकनृत्यों का अभिजन्य वर्गों द्वारा अपने मनोरंजन का

साधन बनाकर (यथा बारात इत्यादि में) इनमें भी व्यावसायी कारण के तत्व दिखाई दे रहे है।

7) पातालकोट के विशेष सन्दर्भ में :–''पातालकोट'' से बाहर आकर रकारी नौकरी या गैर सरकारी नौकरी के युवाओं द्वारा पूछने पर पाया गया कि ''पातालकोट'' में पुरातन स्वरूप में लोक संस्कृति के स्वरूप को संरक्षित नहीं किया जा रहा है। सारे परिवार हिन्दी, तामिया, ऊपरी इलाकों में रह रहे है ओर सारी परम्परायें भी हम युवा कुछ खास मौंकों पर दीपावली इत्यादी में ही निवाह कर पा रहें हैं सारे तथ्यों के ''सन्दर्भ'' में जब ''स्थानीय स्तर'' पर ''सुझााव'' मांगा तो ''सुझाव'' दिया वह था कि हमारे क्षेत्र में ही रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता। वेशक यदि ''आदिवासी संस्कृति जैसे कोई जीव है तो वह अविकृत रूप से संरक्षित नहीं की जा सकती क्योंकि वह आदिवासी ''जीवनप्रणाली'' के तत्वों को बड़े जटिल रूप से जोड़े निश्चित रूप से दोंनो की ही मृत्यु हो जायेगी। वास्तव में एक आदिवासी व्यक्ति की संस्कृति नहीं होती अपितु वह स्वंय में ही ''संस्कृति'' है। आज जैसे–जैसे आदिवासियों से गीत संगीत करता जा रहा है वैसे–वैसे उनके वैयक्ति होने का खतरा बढ़ता जा रहा है।

पूंजीवादी व्यवस्था के आते है संगीत बाजार में आकर खड़ा हो गया है। देश विदेश के बाजारों में नृत्य मंडलियां यात्रा कर रही है। जिसे पातालकोट के बाजारों में नृत्य मंडलियां यात्रा कर रही है। जिसे पातालकोट के भारिया भी बारात इत्यादि में अपने लोकनाट्यों के साथ अभिजान्य वर्ग की बारातों में टोली लेकर आ रहे है। आज वो जनता की पाशविक वृत्तियों को उभारने या उत्तेजित करने के लिए ''घोटुल'' जैसे अन्य आदिवासियों के संगठनों को भी अश्लीलता से प्रस्तुत कर रहा है। आर्थिक संकट और बाजार के उतरते–चढ़ते भाव आदिवासियों की जिन्दगी को अस्थिर बना रहा है। अब प्रकृति को भी ''वनविभाग'' ने आरक्षित कर लिया हैं जहॉ से सुरक्षा और जीविकापार्जन का सहारा था। सुर–संगीत तो दो जून की रोटी और नमक के संघर्ष में कही दब गया है। जहां बड़े–बड़े प्रोजेक्ट आदिवासी विकास के नाम से है, अक्सर वहां के आदिवासी क्या वह गायेगा? क्या वह नाचेगा? आज जो परिवर्तन

दिखाई दे रहा है वह सांस्कृतिक संक्रमण के साथ ही जीवन जीने की कला का ही दिख रहा है।

माना कि जो परम्पराओं में परिवर्तन और पुर्नरचना होती है। उनकी भाषा परिवर्तित होती है। उनमें जोड़ा–घटाया जाता है। पर कब जब लोग रहेंगें समझदार हमारे बाजारों ने हमारे परिवारों को तोड दिया है। आधुनिक सभ्यता का प्रदूषण युगों से संजोये लोक परम्पराओं पर आघात कर रहा है। आधुनिकवाद तो हमारी परम्पराओं क अंत का फरमान लेकर आया। जिन परम्पराओं का सम्बन्ध प्रेम से संवेदनाओं से अनुमति से रहा है। बाजार में एक बड़ा प्रश्न बनकर हम सभी के समक्ष क्योंकि हम जीवन विरोधी हो रहे है। अपने–अपने तर्क देकर अपने को संतुष्ट कर रहे है। जो गीत–संगीत नृत्य, तीज, त्यौहार आदिवासियों के जीवन में रंगभरते थे जीवन की हर धड़कन में रचते बसते थे। आज ऑन म्यूजियम में संग्रहण की वस्तु और शोध का विषय बनकर अपने अस्तितव के लिए संघर्षरत् है। आज उन्हें जडों से प्रताड़कर सृजन करने की प्रवृत्ति का विकास का नाम देकर हम चांद सितारों पर पहुंच सकते है। पर उनकी वह निश्छल हॅसी वक निर्मल मन नहीं लोआ सकते। आदिवासियें को संस्कृति जीवन, आर्थिक क्रिया–कलाप राजनीति, नृत्य संगीत आदि पर सैकड़ों शोध कार्य किये गये, वर्तमान में जारी है और भविष्य में भी जारी रहेंगे। परन्तु कोई भी व्यक्ति दावे के साथ यह नहीं कह सकता कि वह आदिवासियों को पूरा समझ गया है अगर कोई ऐसा दावा करता है तो उससे बड़ी नासमझी किसी के पास नहीं है।

लोक परम्पराओं के अस्तित्व के संघर्ष में निम्न पंक्तियॉ आदिवासी भारिया विवाह पूर्व की संस्कृति है। :–

गाली

वेदं राई की बेटी देखने आयी,
देखत–देखत दारी सेवन लागी।
कौन राईं को छोबर बेटा चौकन बैठो,
गजरा बाई की छिनर बेटी चौकने बैठो।
छिमिया बाई के छिन्र बेटी देखने आयी,
देखत–देखत दारी रोवन लागी।

भारिया जनजाति की अमुक महिला बेटी दूल्हा देखने आयी है। दुल्हे को देखते ही दारी रोने लगी है। यहां किसी महिला का सुन्दर बेटा चौंक पर विराजमान है। गोपा बाई का सुन्दर लड़का चौक पवर विराजमान है। गजरा बाई की छिनाल बेटी लड़के को देखने आयी हैं रमती बाई का सुशील लड़का चौंक पर विराजमान है। छिमिया बाई की छिनाल बेटी लड़के को देखने आयी है। देखते –देखते ही वह रोनी लगी

विशेष –

यह प्राचीन संस्कृति की लोक परम्पराओं की संघर्षरत् रूढ़िवादी गाली है जिसके बिना कोई शादी दस्तूर नहीं हो सकता है। गाली–गीत के रूप में गायी जाने की एक विशेष परम्परा है जिसे नियम भी कह सकते है।

निष्कर्ष –

पातालकोट में भारियाओं की आबादी कम है तथापि और रोमांचक जीवन देखने की ललक हर एक के मन में एक बारगी जागे बगैर नही रह सकती।

लोक परम्परा विशेषतः लोकगीत, लोक संगीत लोकनाट्य :–

कौन राय के बाड़ी,
हॉरे–हॉरे बाड़ी हिरयाव न लागे।
कौन आजन की बाड़ी,
हॉरे हॉरे कौन आजन के बाड़ी।
हॉर–हॉर बाड़ी हरियावन लागे,
कौन आजन की बाड़ी।
हॉरे–हॉरे कौन आजन की बाड़ी,
हॉरे–हॉरे बाड़ी पाठन लागे।

हमारी जनजातियों की सर्वोत्कृष्ट कला है। लोकपरम्पराऍं हमारी प्राचीन संस्कृति की देन है हमारी सभ्यता से बाहर का मामला नहीं अपितु यह तो उत्कृष्ट मानवीय सम्बन्धी की अभिव्यक्ति है।

:: संदर्भ ग्रंथ सूची ::

1. *दि बैगा : बेरयिर एलविन*
2. *ट्रयबल आर्ट ऑफ मिडिल इंडिया : वेरियर एलविन*
3. *मानव और संस्कृति : डॉ. श्यामाचरण दुबे (छिंदबाड़ा गजेटियर)*
4. *आदिम युग की संस्कृति का प्रतीक : (पातालकोट)*
5. *ट्रायबल्स एंड कास्टस ऑफ दी सेन्ट्रल प्राविन्सेस :रसेल और हीरालाल*
6. *प्रो. हीरालाल 1997 :आदिवासी अस्मिता का विकास 1997*
7. *रामचंद्र त्रिपाठी 1985 :''बैगा जनजाति का सामान्य अध्ययन''*
8. *रामभरोस अग्रवाल 988ः ेंड जनजाति का सामान्य अध्ययन –1988*
9. *आदिवासी संग्रहालय छिन्दवाड़ा (म.प्र.)*
10. *आकाशवाणी छिन्दवाड़ा*
11. *पत्रिका – रचना, कादमिब्नी, योजना*
12. *समाचार पत्र – दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण*